

## विषयपरिचय

अग्रायणीय पूर्वके १४ अधिकारों में पांचवाँ चयनलब्धि नामका अधिकार है। उसमें २० प्राभृत हैं। इसमें चतुर्थ प्राभृत कर्मप्रकृतिप्राभृत है। उसमें निम्न २४ अधिकार हैं -- १ कृति, २ वेदना, ३ स्पर्श, ४ कर्म, ५ प्रकृति, ६ बन्धन, ७ निबन्धन, ८ प्रक्रम, ९ उपक्रम, १० उदय, ११ मोक्ष, १२ संक्रम, १३ लेश्या, १४ लेश्याकर्म, १५ लेश्यापरिणाम, १६ सातासात, १७ दीर्घ-ह्रस्व, १८ भवधारणीय, १९ पुद्गलात्त (पुद्गलात्म), २०. निधत्त-अनिधत्त, २१ निकाचित-अनिकाचित, २२ कर्मस्थिति, २३ पश्चिमस्कन्ध और २४ अल्पबहुत्व। इन २४ अधिकारोंमेंसे प्रस्तुत षट्खंडागम (मूलसूत्र) के वेदना नामक चतुर्थ खण्डमें कृति (पु. ९) और वेदनाकी (पु. १०-१२) तथा वर्गणा नामक पाँचवें खंडमें स्पर्श, कर्म और प्रकृति (पु. १३) अधिकारोंकी प्ररूपणा की गयी है।

बन्धन अनुयोगद्वार बन्ध, बन्धनीय, बन्धक और बन्धविधान इन ४ अवान्तर अनुयोगद्वारोंमें विभक्त है। इनमेंसे बन्ध और बन्धनीय अधिकारोंकी भी प्ररूपणा वर्गणाखण्ड (पु. १४) में की गयी है। बन्धक अधिकारकी प्ररूपणा खुद्वाबन्ध नामक द्वितीय खण्डमें तथा बन्धविधान नामक अवान्तर अधिकारकी प्ररूपणा महाबन्ध (इसके ५ भाग भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं और शेष २ भाग भी उक्त संस्थाके द्वारा शीघ्र प्रकाशित होनेवाले हैं।) नामक छठे खण्डमें की गयी है। इस प्रकार मूल षट्खण्डागममें पूर्वोक्त २४ अनुयोगद्वारोंमेंसे प्रथम ६ अनुयोगद्वारोंके ही विषयों का विवरण किया गया है। शेष निबन्धन आदि १६ अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा यद्यपि मूल षट्खण्डागममें नहीं की गयी है फिर भी वर्गणाखण्डके अन्तिम सूत्रको देशामर्शक मानकर उनकी प्ररूपणा अपनी धवला टीका (पु. १५, १६) में वीरसेनाचार्य ने प्राप्त उपदेशके अनुसार संक्षेपमें कर दी है (शूदबलिभडारएण जेणेदं सुत्तं देसामसियभावेण लिहिदं तेणेदेण सुत्तेण सूचिदसेसअट्टारसअणियोगद्वाराणं किंचि संखेवेण परुवणं कस्सामो। पु. १५, पृ. १.)। इसका नाम सत्कर्म प्रतीत होता है (महाकम्मपयडि ..... सव्वाणि परुविदाणि। संतकम्मपंजिया की उत्थानिका (पु. १५, परिशिष्ट पृ. १)।

उन शेष १८ अनुयोगद्वारोंमेंसे निबन्धन, प्रक्रम, उपक्रम और उदय ये ४ (७-१०) अनुयोगद्वार पुस्तक १५ में प्रकाशित हो रहे हैं। तथा शेष १४ (११-२४) अनुयोगद्वार पुस्तक १६ में प्रकाशित किये जायेंगे। इनका विषयपरिचय इसप्रकार है।

७. निबन्धन -- 'निबध्यते तदस्मिन्निति निबन्धनम्' इस निरुक्तिके अनुसार जो द्रव्य जिसमें निबद्ध है उसे निबन्धन कहा जाता है। निक्षेपयोजनाके ये ६ भेद किये गये हैं -- नामनिबन्धन, स्थापनानिबन्धन, द्रव्यनिबन्धन, क्षेत्रनिबन्धन, कालनिबन्धन और भावनिबन्धन। इन सबके स्वरूपका विवरण करते हुए यहाँ नाम और स्थापना निबन्धनोंको छोड़कर शेष ४ निबन्धनोंको प्रकृत बतलाया है। साथमें यहाँ यह भी निर्देश किया गया है कि यद्यपि इस निबन्धन अनुयोगद्वारमें छहों द्रव्योंके निबन्धनकी प्ररूपणा की जाती है (इसकी प्ररूपणा संतकम्मपंजिया (परिशिष्ट पृ. १-१३) में देखिये।) फिर भी अध्यात्मविद्याका अधिकार होनेसे यहाँ उन सबको छोड़कर केवल कर्मनिबन्धनकी ही प्ररूपणा की गयी है। सर्वप्रथम यहाँ निबन्धन अनुयोगद्वारकी आवश्यकता प्रकट करते हुए यह बतलाया है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके द्वारा कर्मों और उनके मिथ्यात्वप्रभृति प्रत्ययोंकी प्ररूपणा की जा चुकी है। साथ ही कर्मरूप होनेकी योग्यता रखनेवाले पुद्गलोंका भी विवेचन किया ही जा चुका है। किन्तु उन कर्मोंकी प्रकृति कहाँ किस प्रकार होती है, यह नहीं बतलाया गया है। इसीलिये कर्मोंके इस व्यापारको प्ररूपणाके लिये प्रकृत निबन्धन अनुयोगका अवतार हुआ है।

नोआगमकर्मनिबन्धनके दो भेद हैं -- मूलकर्मनिबन्धन और उत्तरकर्मनिबन्धन। उनमेंसे मूलकर्मनिबन्धनमें ज्ञानावरणादि ८ मूल प्रकृतियोंके तथा उत्तरप्रकृतिनिबन्धनमें इन्हींके उत्तर भेदोंके निबन्धनकी प्ररूपणा की गयी है।

८ प्रक्रम -- यहाँ निक्षेपयोजना करते हुए प्रक्रमके ये ६ भेद निर्दिष्ट किये गये हैं -- नामप्रक्रम, स्थापनाप्रक्रम, द्रव्यप्रक्रम, क्षेत्रप्रक्रम, कालप्रक्रम और भावप्रक्रम। इनके कुछ और उत्तरभेदोंका उल्लेख करते हुए यहाँ कर्मप्रक्रमको अधिकार प्राप्त बतलाया है तथा 'प्रक्रामतीति प्रक्रमः' इस निरुक्तिके अनुसार प्रक्रमसे कर्मण पुद्गलप्रचयका अभिप्राय बतलाया है।

यहाँ यह शंका उठायी गयी है कि जिस प्रकार कुंभार एक मिट्टीके पिण्डसे अनेक घटादिकोंको उत्पन्न करता है उसी प्रकार यह संसारी प्राणी एक प्रकारके कर्मको बाँधकर फिर उससे आठ प्रकारके कर्मोंको उत्पन्न करता है, क्योंकि, अन्यथा अकर्म पर्यायसे कर्मपर्यायका उत्पन्न होना संभव नहीं है। इसके उत्तरमें कहा गया है कि जब अकर्मसे कर्म की उत्पत्ति संभव नहीं है तब जिस एक कर्मसे आठ प्रकारके कर्मोंकी उत्पत्ति स्वीकार की जाती है वह एक कर्म भी कैसे उत्पन्न हो सकेगा? यदि उसे भी कर्मसे ही उत्पन्न माना जावेगा तो ऐसी अवस्थामें

अनवस्थाजनित अव्यवस्था दुर्निवार होगी। इसलिये उसे अकर्मसेही उत्पन्न मानना पड़ेगा। दूसरे, कार्य सर्वथा कारणके ही अनुरूप होना चाहिये, ऐसा एकान्त नियम नहीं बन सकता; अन्यथा मृत्तिकापिण्डसे घट-घटी आदि उत्पन्न न होकर मृत्तिकापिण्डके ही उत्पन्न होनेका प्रसंग अनिवार्य होगा। परन्तु चूँकि ऐसा होता नहीं है, अत एव कार्य कथंचित् (द्रव्यकी अपेक्षा) कारणके अनुरूप और कथंचित् (पर्यायकी अपेक्षा) उससे भिन्न ही उत्पन्न होता है, ऐसा स्वीकार करना चाहिये।

प्रसंग पाकर यहाँ सांख्याभिमत सत्कार्यवादका उल्लेख करते हुए उसका निराकरण करते हुए 'नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि' इत्यादि आप्तमीमांसाकी अनेक कारिकाओंको उद्धृत करके तदनुसार नित्यत्वैकान्त और सर्वथा असत्कार्यवादका भी खण्डन किया गया है। इसके अतिरिक्त परस्पर निरपेक्ष अवस्थामें उभय (सत्-असत्)रूपता भी उत्पद्यमान कार्यमें नहीं बनती, इसका उल्लेख करते हुए स्याद्वादसम्मत सप्तभंगीकी भी योजना की गयी है। इसी सिलसिले में बौद्धाभिमत क्षणक्षयित्वका उल्लेख कर उसका निराकरण करते हुए द्रव्यकी उत्पाद-व्यय-धौव्यतास्वरूपको सिद्ध किया गया है।

पूर्वोक्त कारिकाओंके अभिप्रायानुसार पदार्थोंको सर्वथा सत् स्वीकार करनेवाले सांख्योंके यहाँ प्रागभावादिके असम्भव हो जानेसे जिस प्रकार अनादिता, अनन्तता, सर्वात्मकता और निःस्वरूपताका प्रसंग दुर्निवार है उसी प्रकार सर्वथा अभाव (शून्यैकान्त) को स्वीकार करनेवाले माध्यमिकोंके यहाँ अनुमानादि प्रमाणके असम्भव होनेसे स्वपक्षकी सिद्धि और परपक्षको दूषित न कर सकनेका भी प्रसंग अनिवार्य होगा। परस्पर निरपेक्ष उभयस्वरूपता (सदसदात्मकता) को स्वीकार करनेवाले भाट्टोंके समान सांख्योंके यहाँ भी परस्परपरिहारस्थितिलक्षण विरोधकी सम्भावना है ही। कारण कि वह (उभयस्वरूपता) स्याद्वाद सिद्धान्तको स्वीकार किये बिना बन नहीं सकती। पूर्वोक्त दोषोंके परिहारकी इच्छासे बौद्ध जो सर्वथा अनिर्वचनीयताको स्वीकार करते हैं वे भी भला 'तत्त्व अनिर्वचनीय है' इस प्रकारके वचनके विना अपनी अभीष्ट तत्त्वव्यवस्थाका बोध दूसरोंको किस प्रकारसे करा सकेंगे? इस प्रकार सर्वथा सदसदादि एकान्त पक्षोंकी समीक्षा करते हुए यहाँ इन सात भंगोंकी योजना की गयी है। यथा --

१. स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा वस्तु कथंचित् सत् ही है। २. वही परद्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा कथंचित् असत् ही है। ३. क्रमसे स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि विवक्षा

होनेपर वह कथंचित् सदसत् (उभयस्वरूप) ही है। ४. युगपत् स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि दोनोंकी विवक्षामें वस्तु कथंचित् अवाच्य ही है। इन चार मुख्य भंगोंका निर्देश तो 'कथंचित् सदेवेष्टं' इत्यादि कारिकामें ही कर दिया गया है। शेष तीन भंग 'च' शब्दसे सूचित कर दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं -- ५. कथंचित् वस्तु सत् और अवक्तव्य है। ६. कथंचित् वह असत् और अवक्तव्य ही है। ७. कथंचित् वह सत्-असत् और अवक्तव्य ही है। इन तीन भंगोंमें यथाक्रमसे स्वद्रव्यादि तथा युगपत् स्व-परद्रव्यादि, परद्रव्यादि तथा युगपत् स्व-परद्रव्यादि और क्रमसे स्व-परद्रव्यादि तथा युगपत् स्व-परद्रव्यादिकी विवक्षा की गयी है।

यहाँ जो आप्तमीमांसाकी 'कथंचित् ते सदेवेष्टं' आदि कारिका उद्धृत की गयी है ठीक उसी प्रकारकी प्राकृत गाथा पंचास्तिकाय में पायी जाती है। यथा --

सिय अत्थि णत्थि उभयं अव्वत्तव्वं पुणो ण तत्तिदय।

दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ।।

प्रकृतिप्रक्रम, स्थितिप्रक्रम और अनुभागप्रक्रम के भेदसे प्रक्रम तीन प्रकारका बतलाया गया है। इनमें प्रकृतिप्रक्रम को मूलप्रकृतिप्रक्रम और उत्तरप्रकृतिप्रक्रम इन दो भेदों में विभक्त कर यथाक्रमसे उनके अल्पबहुत्वकी यहाँ प्ररूपणा की गयी है। अन्तमें स्थितिप्रक्रम और अनुभागप्रक्रमकी की संक्षेपमें प्ररूपणा करके इस अनुयोगद्वारको समाप्त किया गया है।

९. उपक्रम -- प्रक्रमके समान ही उपक्रमके भी ये छह भेद निर्दिष्ट किये गये हैं -- नामउपक्रम, स्थापनाउपक्रम, द्रव्यउपक्रम, क्षेत्रउपक्रम, कालउपक्रम और भावउपक्रम। यहाँ कर्मउपक्रमको अधिकारप्राप्त बतलाकर उसके ये चार भेद निर्दिष्ट किये गये हैं -- बन्धनोपक्रम, उदीरणोपक्रम, उपशामनोपक्रम और विपरिणामोपक्रम। यहाँ प्रक्रम और उपक्रममें विशेषताका उल्लेख करते हुए यह बतलाया है कि प्रक्रम, प्रकृति, स्थिति और अनुभागमें आनेवाले प्रदेशाग्रकी प्ररूपणा करता है जबकि उपक्रम बन्ध होनेके द्वितीय समयसे लेकर सत्त्व स्वरूपसे स्थित कर्मपुद्गलोंके व्यापारकी प्ररूपणा करता है।

बन्धनोपक्रमके भी यहाँ प्रकृति व स्थिति आदिके भेदसे चार भेद बतलाकर उनकी प्ररूपणा सत्कर्मप्रकृतिप्राभृतके समान करना चाहिये, ऐसा उल्लेखमात्र किया गया है। यहाँ यह आशंका उठायी गयी है कि इनकी प्ररूपणा जैसी महाबंध में की गयी है तदनुसार ही वह यहाँ क्यों न की

जाय? इसके समाधानमें बतलाया गया है कि महाबन्धमें चूँकि प्रथम समय बन्धका आश्रय लेकर वह प्ररूपणा की गयी है अत एव तदनुसार यहाँ उनकी प्ररूपणा करना इष्ट नहीं है ।

उदीरणा -- उदयावलीबाह्य स्थितिको आदि लेकर आगेकी स्थितियोंके बन्धावली अतिक्रान्त प्रदेशपिण्डका पत्योपमके असंख्यातवें भाग प्रतिभागसे या असंख्यात लोक प्रतिभागसे अपकर्षण करके उसको उदयावलीमें देना, इसे उदीरणा कहा गया है । अभिप्राय यह है कि उदयावलिको छोड़कर आगेकी स्थितियोंमेंसे प्रदेशपिण्डको खींचकर उसे उदयावलीमें प्रक्षिप्त करनेको उदीरणा कहते हैं । वह दो प्रकारकी है -- एक-एक-प्रकृतिउदीरणा और प्रकृतिस्थानउदीरणा । एक-एक प्रकृतिउदीरणाकी प्ररूपणामें प्रथमतः उसके स्वामियोंका विवेचन किया गया है । उदाहरणार्थ, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मोंकी उदीरणाके स्वामीका निर्देश करते हुए बतलाया है कि इन कर्मोंकी उदीरणा मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक होती है । विशेषता इतनी है कि क्षीणकषायके कालमें एक समय अधिक आवलीमात्र शेष रहनेपर उसकी उदीरणा व्युच्छिन्न हो जाती है ।

तत्पश्चात् एक-एकप्रकृतिउदीरणाविषयक एक जीवकी अपेक्षा काल और अन्तर तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल और अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गयी है । नाना जीवोंकी अपेक्षा उसके अन्तर की सम्भावना ही नहीं है । एक एक प्रकृतिका अधिकार होने से यहाँ भुजाकार पदनिक्षेप और वृद्धि उदीरणाकी भी सम्भावना नहीं है ।

प्रकृतिस्थान उदीरणाकी प्ररूपणामें स्थानसमुत्कीर्तना करते हुए मूल प्रकृतियोंके आधारसे ये प्रकृतिस्थान बतलाये गये हैं -- आठों प्रकृतियोंकी उदीरणारूप पहला; आयुके विना शेष सात प्रकृतिरूप दूसरा; आयु और वेदनीयके विना शेष छह प्रकृतियोंरूप तीसरा; मोहनीय, आयु और वेदनीयके विना चौथा; तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु और अन्तरायके विना शेष दो प्रकृतियोंरूप पाँचवा ।

स्वामिप्ररूपणामें उक्त स्थानोंके स्वामियोंका निर्देश करते हुए बतलाया है कि इनमेंसे प्रथम स्थान, जिसका आयु कर्म उदयावलीमें प्रविष्ट नहीं है ऐसे प्रमत्त (मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत तक प्रमादयुक्त) जीवके होता है । द्वितीय स्थानके ही उक्त जीवके ही होता है । विशेषता केवल इतनी है कि उसका आयु कर्म उदयावलीमें प्रविष्ट हो जाना चाहिए । तीसरा स्थान सातवें गुणस्थानसे लेकर दसवें गुणस्थान तक होता है । चौथे स्थानका स्वामी छद्मस्थ वीतराग

(उपशान्तकषाय और क्षीणमोह) जीव होता है। विशेष इतना है कि वह क्षीणमोहके कालमें आवलीमात्र काल शेष रह जानेके पहले ही होता है, उसके पश्चात् नहीं। पाँचवें (नाम व गोत्र प्रकृतिरूप) स्थानके स्वामी चरम आवली कालवर्ती क्षीणकषाय तथा सयोगकेवली हैं।

तत्पश्चात् प्रकृतिस्थान उदीरणाकी ही प्ररूपणामें एक जीवकी अपेक्षा काल और अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल व अन्तर तथा अल्पबहुत्वका विचार किया गया है।

भुजाकार उदीरणाकी प्ररूपणामें अर्थपदका कथन करते हुए बतलाया है कि अनन्तर अतिक्रान्त समयमें थोड़ी प्रकृतियोंकी उदीरणा करके इस समय उनसे अधिक प्रकृतियोंकी उदीरणा करना इसे भुजाकार (भूयस्कार) उदीरणा करते हैं। अनन्तर अतिक्रान्त समयमें अधिक प्रकृतियोंकी उदीरणा करके इस समय उनसे कम प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेका नाम अल्पतर उदीरणा है। अनन्तर अतिक्रान्त समयमें जितनी प्रकृतियोंकी उदीरणा कर रहा था इस समय भी उतनी ही प्रकृतियोंकी उदीरणा करना - उनसे हीन अथवा अधिककी उदीरणा न करना - इसे अवस्थित उदीरणा कहा जाता है। अनन्तर अतिक्रान्त समयमें अनुदीरक होकर इस समयमें की जानेवाली उदीरणाका नाम अवक्तव्य उदीरणा है।

स्वामित्वप्ररूपणामें यह बतलाया गया है कि भुजाकार उदीरणा, अल्पतर उदीरणा और अवस्थित उदीरणाका स्वामी कोई भी मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव हो सकता है। अवक्तव्यउदीरणाका स्वामी संभव नहीं है।

एक जीवकी अपेक्षा कालकी प्ररूपणामें भुजाकारउदीरणाका काल जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे दो समय अथवा मात्र बतलाया गया है जो इस प्रकारसे सम्भव है -- कोई उपशान्तकषाय जीव वहाँसे च्युत होकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणवर्ती हुआ। वहाँ वह पाँच-छह प्रकृतियोंकी उदीरणा करनेके कारण भुजाकारउदीरक हो गया। इस प्रकार भुजाकार उदीरणाका जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ। पुनः वही द्वितीय समयमें मृत्युको प्राप्त होकर देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें वह छह प्रकृतियोंसे आठका उदीरक होकर भुजाकारउदीरक ही रहा है। यहाँ भुजाकार उदीरणाका द्वितीय समय प्राप्त हुआ। इस प्रकार भुजाकार उदीरणाका उत्कृष्ट काल दो समयमात्र प्राप्त होता है।

अल्पतर उदीरणाका भी काल जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे दो समय मात्र है। वह इस प्रकारसे -- प्रमत्तसंयतके अन्तिम समयमें आयुकर्मके उदयावलीमें प्रविष्ट हो जानेपर वह आठसे सात प्रकृतियोंकी उदीरणा करता हुआ अल्पतर उदीरणा करता हुआ अल्पतर उदीरक हो गया। इस प्रकार अल्पतर उदीरणाका काल एक समय प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् द्वितीय समयमें अप्रमत्त गुणस्थान प्राप्त होनेपर वह वेदनीय कर्मके विना छह प्रकृतियोंकी उदीरणा करता हुआ अल्पतर उदीरक ही रहा। इस प्रकार अल्पतर उदीरणाका काल भी उत्कर्षसे दो समय मात्र ही पाया जाता है।

अवस्थित उदीरणाका काल जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे एक समय अधिक एक आवलीसे हीन तैंतीस सागरोपमप्रमाण है। देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें पाँच, छह या सातसे आठका उदीरक होकर भुजाकार उदीरक हुआ। पुनः द्वितीय समयसे लेकर मरणावली प्राप्त होनेतक अवस्थित रूपसे आठका ही उदीरक रहा। इस प्रकार अवस्थित उदीरणाका उत्कृष्ट काल प्रथम समय और अन्तिम आवलीको छोड़कर पूर्ण देव पर्यायप्रमाण तैंतीस सागरोपम मात्र प्राप्त हो जाता है।

अन्तरप्ररूपणामें भुजाकार उदीरणाके अन्तरपर विचार करते हुए उसका अन्तर एक या दो समय मात्र बतलाया गया है। यथा -- पाँच प्रकृतियोंका उदीरक कोई उपशान्तकषाय नीचे गिरता हुआ सूक्ष्मसाम्परायिक होकर छहका उदीरक हुआ। तत्पश्चात् द्वितीय समयमें भी वह छहका उदीरक हुआ। इस प्रकार भुजाकार उदीरणाका अवस्थित उदीरणासे अन्तर हुआ। पुनः तृतीय समयमें मरकर वह देवोंमें उत्पन्न हो आठका उदीरक होकर भुजाकार उदीरणा करने लगा। इस प्रकार भुजाकार उदीरणाका एक समय मात्र जघन्य अन्तर प्राप्त हो जाता है। उसका उत्कृष्ट अन्तर एक समय तैंतीस सागरोपम प्रमाण है। वह इस प्रकारसे -- कोई जीव तैंतीस सागरोपम आयुवाले देवोंमें आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें भुजाकार उदीरक हुआ और द्वितीय समयसे लेकर मरणावली प्राप्त होनेके पूर्व समय तक वह अवस्थित उदीरक रहा। इस प्रकार उसका इतना अन्तर अवस्थित उदीरणासे हुआ। तत्पश्चात् मरणको प्राप्त होकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें पुनः भुजाकार हुआ। इस प्रकार भुजाकार उदीरणा का अवस्थित और अल्पतर उदीरणाओंसे एक समय कम पूरे तैंतीस सागरोपम काल तक अन्तर रहा।

आगे चलकर इसी भुजाकार उदीरणाकी प्ररूपणामें नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयकी अतिसंक्षेपमें प्ररूपणा करते हुए भागाभग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर और भाव; इन सबकी जानकर प्ररूपणा करनेका निर्देशमात्र किया गया है।

पदनिक्षेपप्ररूपणामें भुजाकार उदीरणाकी उत्कृष्ट वृद्धि आदि किसके होती है, इसका कुछ विवेचन करते हुए प्रकृत हानि-वृद्धि आदिके अल्प-बहुत्व का निर्देश मात्र किया गया है।

वृद्धिउदीरणाप्ररूपणामें संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थितउदीरणा इन चार पदोंके अस्तित्वका उल्लेखमात्र करके शेष प्ररूपणा जानकर करना चाहिए (सेसं जाणिऊण वत्तव्वं) इतना मात्र निर्देश करते हुए मूलप्रकृतिउदीरणाकी प्ररूपणा समाप्त की गयी है।

मूलप्रकृतिउदीरणाके समान उत्तरप्रकृतिउदीरणा भी दो प्रकारकी है -- एक-एक प्रकृतिउदीरणा और प्रकृतिस्थानउदीरणा। इनमें प्रथमतः एक-एक प्रकृतिउदीरणाकी प्ररूपणा स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर इन अधिकारोंके द्वारा की गयी है। आठ कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंमें से किस किस प्रकृतिके कौन-कौनसे जीव उदीरक होते हैं, इसका विवेचन स्वामित्वमें किया गया है। एक जीवकी अपेक्षा कालके कथनमें यह बतलाया है कि अमुक अमुक प्रकृतिकी उदीरणा एक जीवके आश्रयसे निरन्तर जघन्यतः इतने काल और उत्कर्षतः इतने काल तक होती है। एक जीवकी अपेक्षा विवक्षित प्रकृतिकी उदीरणाका अन्तर जघन्यसे कितना और उत्कर्षसे कितना होता है, इसका विचार एक जीवकी अपेक्षा अन्तरके निरूपणमें किया गया है।

मतिज्ञानावरणादि प्रकृतियोंकी उदीरणामें नाना जीवोंकी अपेक्षा कितने भंग सम्भव हो सकते हैं, इसका विचार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयमें किया गया है। उदाहरणके रूपमें पाँच ज्ञानावरण प्रकृतियोंके उदारक कदाचित् सब जीव हो सकते हैं। कदाचित् बहुत उदीरक और अनुदीरक होता है तथा कदाचित् बहुत जीव उदीरक और बहुत जीव अनुदीरक भी होते हैं। इस प्रकार यहाँ तीन भंग संभव हैं। नाना जीव यदि विवक्षित प्रकृतिकी उदीरणा करें तो कमसे कम कितने काल और अधिकसे अधिक कितने काल करेंगे, इसका विचार 'नाना जीवो की अपेक्षा काल' में किया गया है। इसी प्रकार नाना जीव विवक्षित प्रकृतिको छोड़कर अन्य प्रकृतिकी उदीरणा करते हुए यदि फिरसे उक्त प्रकृतिकी उदीरणा

प्रारम्भ करते हैं तो कमसे कम कितने कालमें और अधिकसे अधिक कितने कालमें करते हैं, इसका विवेचन नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरमें किया गया है।

संनिकर्ष -- एक-एक प्रकृति उदीरणाकी ही प्ररूपणाको चालू रखते हुए संनिकर्षका भी यहाँ कथन किया गया है। यह संनिकर्ष स्वस्थान और परस्थानके भेदसे दो प्रकारका निर्दिष्ट किया गया है। स्वस्थान संनिकर्षके विवेचनमें ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंमें किसी एक कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमेंसे विवक्षित प्रकृतिकी उदीरणा करनेवाला जीव उसकी ही अन्य शेष प्रकृतियोंका उदीरक होता है या अनुदीरक, इसका विचार किया गया है। जैसे -- मतिज्ञानावरणकी उदीरणा करनेवाला शेष चार ज्ञानावरण प्रकृतियोंका भी नियमसे उदीरक होता है। चक्षुदर्शनावरणकी उदीरणा करनेवाला अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण इन तीन दर्शनावरण प्रकृतियोंका नियमसे उदीरक तथा शेष पाँच दर्शनावरण प्रकृतियों का वह कदाचित् उदीरक होता है। परस्थानसंनिकर्षमें आठों कर्मोंकी समस्त उत्तरप्रकृतियोंमें से किसी एककी विवक्षा कर शेष सभी प्रकृतियोंकी उदीरणा अनुदीरणाका विचार किया जाना चाहिये था। परन्तु सम्भवतः उपदेशके अभावमें वह यहाँ नहीं किया जा सका है, उसके सम्बन्धमें यहाँ केवल इतनी मात्र सूचना दी गयी है कि 'परत्थाणसण्णियासो जाणियूण वत्तव्वो' अर्थात् परस्थान संनिकर्षका कथन जानकर करना चाहिये।

अल्पबहुत्व -- यह अल्पबहुत्व भी स्वस्थान और परस्थानके भेदसे दो प्रकारका है। इनमेंसे स्वस्थान अल्पबहुत्वमें ज्ञानावरणादि एक-एक कर्मकी पृथक्-पृथक् उत्तर प्रकृतियोंके उदीरणाकी हीनाधिकताका विचार किया गया है। परस्थान अल्पबहुत्वकी प्ररूपणामें समस्त कर्मप्रकृतियोंके उदीरकोंकी हीनाधिकताका विचार सामान्य रूपसे किया जाना चाहिये था। परन्तु उसका भी विवेचन यहाँ सम्भवतः उपदेशके अभावमें नहीं किया जा सका है। इतना ही नहीं, बल्कि स्वस्थान अल्पबहुत्वकी प्ररूपणामें भी केवलज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय इन तीन कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंके आश्रयसे उपर्युक्त अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की जा सकी है, शेष मोहनीय आदि कर्मोंके आश्रयसे वह भी नहीं की गयी है। यहाँ उसके सम्बन्धमें इतनी मात्र सूचना की गयी है 'उपरि उपदेसं लहिय वत्तव्वं। परत्थाणप्पाबहुगं जाणिय वत्तव्वं' अर्थात् आगे मोहनीय आदि शेष कर्मोंके सम्बन्धमें प्रकृत स्वस्थान अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा उपदेश पाकर करना चाहिये।

यहाँ एक-एक प्रकृतिकी विवक्षा होनेसे भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धि प्ररूपणाओंकी असम्भावना प्रकट की गयी है।

प्रकृतिस्थानउदीरणा -- यहाँ ज्ञानावरण आदि एक-एक कर्मकी अलग-अलग उत्तर प्रकृतियोंका आश्रय करके जितने उदीरणास्थान सम्भव हों उनके आधारसे स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल व अन्तर तथा नाना जीवकी अपेक्षा भंगविचय, काल, अन्तर तथा अल्पबहुत्वका विचार किया गया है। उदाहरणस्वरूप मोहनीय कर्मकी स्थानउदीरणामें एक, दो, चार, पाँच, छह, सात,औठ, नौ और दस प्रकृतिरूप नौ स्थानोंकी सम्भावना है। उनमें एक प्रकृतिरूप उदीरणास्थान स्थानके चार भंग हैं -- संज्वलन क्रोधके उदयसे प्रथम भंग, मानसंज्वलनके उदयसे दूसरा भंग, मायासंज्वलनके उदयसे तीसरा भंग और लोभसंज्वलनके उदयसे चौथा भंग। इन भंगोंका कारण यह है कि इन चारों प्रकृतियोंमेंसे विवक्षित समयमें किसी एककी ही उदीरणा हो सकती है। दो प्रकृतिरूप स्थानके उदीरकके बारह भंग होते हैं -- इसका कारण यह है कि विवक्षित समयमें तीन वेदोंमें से किसी एकही वेदकी उदीरणा हो सकेगी तथा उसके साथ उक्त चार संज्वलन कषायोंमें से किसी एक संज्वलन कषायकी भी उदीरणा होगी। इस प्रकार दो प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणामें बारह ( $4 \times 3 = 12$ ) भंग प्राप्त होते हैं। चार प्रकृतिरूप स्थानकी उदीरणामें चौबीस भंग होते हैं। वे इस प्रकारसे -- तीन वेदोंमें से कोई एक वेद प्रकृति, चार संज्वलन कषायोंमेंसे कोई एक, तथा इनके साथ हास्य-रति या अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल रहेगा। इस प्रकार चार प्रकृतिरूप स्थानके चौबीस ( $3 \times 4 \times 2 = 24$ ) भंग प्राप्त होते हैं। इस चार प्रकृतिरूप स्थानमें भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्व प्रकृति अथवा प्रत्याख्यानावरणादि चारमेंसे किसी एक प्रत्याख्यानावरण कषायके सम्मिलित होनेपर पाँच प्रकृतिरूप स्थानके चार चौबीस ( $4 \times 24 = 96$ ) भंग होते हैं। इसी प्रकारसे आगे भी छह प्रकृतिरूप स्थानके सात चौबीस ( $24 \times 7 = 168$ ), सात प्रकृतिरूप स्थानके ( $24 \times 9 = 216$ ), नौ प्रकृतिरूप स्थानके छह चौबीस ( $24 \times 6 = 144$ ) तथा दस प्रकृतिरूप स्थानके एक चौबीस ( $24 \times 5 = 120$ ) भंग होते हैं। इस प्रकार मोहनीय कर्मकी स्थान उदीरणामें प्रथमतः स्थान समुत्कीर्तना करके तत्पश्चात् स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, संनिकर्ष और अल्पबहुत्व इन अधिकारोंके द्वारा उसकी ही प्ररूपणा हो गई है।

इसी प्रकारसे ज्ञानावरणादि अन्य कर्मोंके भी विषयमें पूर्वोक्त स्वामित्व आदि अधिकारोंके द्वारा यथासम्भव स्थान उदीरणाकी प्ररूपणा की गयी है। वेदनीय और आयु कर्मोंके स्थान उदीरणाकी सम्भावना नहीं है।

भुजाकार उदीरणा -- यहाँ प्रथमतः दर्शनावरणके सम्बन्धमें भुजाकार अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य इन चारों ही उदीरणाओंके अस्तित्वकी सम्भावना बतलाकर तत्पश्चात् उनके स्वामी, एक जीवकी अपेक्षा काल व अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल व अन्तरका तथा अल्पबहुत्वका संक्षेपमें विवेचन किया गया है। आगे चलकर इसी क्रमसे मोहनीयके संबंधमें भी भुजाकार उदीरणाकी प्ररूपणा करके उसे यहीं समाप्त कर दिया है। नामकर्म आदि अन्य कर्मोंके सम्बन्धमें उक्त प्ररूपणा नहीं की गयी है। इसके पश्चात् अति संक्षेपमें पदनिक्षेप और वृद्धिप्ररूपणा करके प्रकृतिउदीरणाकी प्ररूपणा की गयी है।

स्थितिउदीरणा -- यह भी मूलप्रकृतिस्थितिउदीरणा और उत्तरप्रकृतिस्थितिउदीरणाके भेदसे दो प्रकारकी है। मूलप्रकृतिस्थितिउदीरणामें मूल प्रकृतियोंके आश्रयसे स्थितिउदीरणाका जघन्य और उत्कृष्ट प्रमाण बतलाया गया है। जैसे -- ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिउदीरणा दो आवलियोंसे कम तीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण है। यहाँ उत्कृष्ट स्थितिउदीरणामें दो आवली कम बतलानेका कारण यह है कि बन्धावली और उदयावलीगत स्थिति उदीरणाके अयोग्य होती है। जघन्य स्थितिउदीरणा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकी एक स्थिति मात्र है जो कि ऐसे क्षीणकषाय जीवके पायी जाती है जिसे अन्तिम समयवर्ती क्षीणकषाय होनेमें एक समय अधिक एक आवली काल शेष है। मोहनीयकी जघन्य स्थिति उदीरणा भी एक स्थितिमात्र है जो कि ऐसे सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके पायी जाती है जिसके अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक होनेमें एक समय अधिक आवलि मात्र शेष रही है। वेदनीयके जघन्य स्थितिउदीरणा पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन तीन बटे सात (३/७) सागरोपमप्रमाण है।

जिस प्रकार मूलप्रकृतिस्थितिउदीरणामें मूलप्रकृतियोंके आश्रयसे यह प्ररूपणा की गयी है उसी प्रकारसे उत्तरप्रकृतिस्थितिउदीरणामें उत्तर प्रकृतियोंके आश्रयसे उक्त प्ररूपणा की गयी है।

जिस प्रकार मूलप्रकृतिस्थितिउदीरणामें मूलप्रकृतियोंके आश्रयसे यह प्ररूपणा की गयी है उसी प्रकारसे उत्तर प्रकृतिस्थितिउदीरणामें उत्तर प्रकृतियोंके आश्रयसे उक्त प्ररूपणा की गयी है।

स्वामित्व -- पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिके उदीरक कौन और किस अवस्थामें होते हैं इसका विचार स्वामिप्ररूपणामें किया गया है।

एक जीवकी अपेक्षा काल -- उक्त पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट तथा जघन्य और अजघन्य स्थितिउदीरण जघन्यसे कितने काल और उत्कर्षसे कितने काल होती है, इसका विचार यहाँ कालप्ररूपणामें किया गया है। उदाहरणके रूपमें जैसे पाँच ज्ञानावरण प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त मात्र होती है। उसकी अनुकृष्ट स्थिति उदीरणाका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन अनन्त काल है। उन्हींकी जघन्य स्थितिउदीरणाका काल जघन्यसे भी एक समय मात्र है और उत्कर्षसे भी एक समयमात्र ही है। इनकी अजघन्य स्थितिउदीरणाका काल अभव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि-अपर्यवसित और भव्य जीवोंकी अनादि-सपर्यवसित है।

एक जीवकी अपेक्षा अन्तर -- जिस प्रकार काल प्ररूपणामें उत्कृष्ट, अनुकृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिउदीरणाओंके काल का कथन किया गया है उसी प्रकार अन्तर प्ररूपणामें उनके अन्तरका विचार किया गया है।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय -- यहाँ अर्थपदके कथनमें बतलाया है कि जो जीव उत्कृष्ट स्थितिके उदीरक होते हैं वे अनुकृष्ट स्थितिके अनुदीरक होते हैं और जो अनुकृष्ट स्थितिके उदीरक होते हैं वे उत्कृष्ट स्थितिके अनुदीरक होते हैं। इसी प्रकारसे जो जघन्य स्थितिके उदीरक होते हैं वे अजघन्य स्थितिके नियमसे अनुदीरक होते हैं तथा जो अजघन्य स्थितिके उदीरक होते हैं वे जघन्य स्थितिके नियमसे अनुदीरक होते हैं। इस प्रकार अर्थपदका उल्लेख करके तत्पश्चात् किन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा आदिमें कितने भंग होते हैं इसका विचार किया गया है। जैसे -- पाँच ज्ञानावरण प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके कदाचित् सब जीव अनुदीरक होते हैं, कदाचित् बहुत अनुदीरक और एक उदीरक होता है तथा कदाचित् बहुत अनुदीरक और बहुतही उदीरक होते हैं। इस प्रकार उनकी उत्कृष्ट स्थितिके उदीरकोंमें तीन भंग पाये जाते हैं। अनुकृष्ट स्थितिके उदीरकोंमें भी तीन भंग पाये जाते हैं। किन्तु वे विपरीत

क्रमसे पाये जाते हैं। यथा अनुत्कृष्ट स्थिति के कदाचित् सब जीव उदीरक, कदाचित् बहुत उदीरक एक अनुदीरक तथा कदाचित् बहुत उदीरक व बहुत अनुदीरक होते हैं।

नाना जीवोंकी अपेक्षा काल और अन्तरकी प्ररूपणा न करके यहाँ केवल इतना उल्लेख किया गया है कि उनकी प्ररूपणा नाना जीवोंकी अपेक्षा की गयी पूर्वोक्त भंगविचयप्ररूपणासे ही सिद्ध करके करना चाहिये।

संनिकर्ष -- मतिज्ञानावरण प्रकृतिको प्रधान करके उसकी उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणा करनेवाला जीव अन्य सब प्रकृतियोंमें किस किस प्रकृतिकी स्थितिका उदीरक या अनुदीरक होता है, तथा यदि उदीरक होता है तो क्या उत्कृष्ट स्थितिका उदीरक होता है या अनुत्कृष्ट स्थितिका; इसका विचार यहाँ किया गया है। उदाहरणार्थ -- मतिज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणा करनेवाला श्रुतज्ञानावरणकी स्थितिका नियमसे उदीरक होता है। उदीरक होकर भी वह उसकी उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट दोनोंही स्थितियोंका उदीरक होता है। अनुत्कृष्ट स्थितिका उदीरक होता हुआ उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कम, दो समय कम, तीन समय कम, इत्यादि क्रमसे पत्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र से हीन व उत्कृष्ट स्थितिका उदीरक होता है। इसी प्रकारसे अवधिज्ञानावरणादि शेष तीन ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण तथा साता व असाता वदनीय आदि सभी प्रकृतियोंकी स्थिति उदीरणाका तुलनात्मक विचार यहाँ संनिकर्षप्ररूपणामें किया गया है। इस प्रकार मतिज्ञानावरणकी प्रधानतासे पूर्वोक्त प्ररूपणा कर चुकनेके बाद यहाँ यह उल्लेखमात्र किया गया है कि शेष ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंमेंसे एक एकको प्रधान कर उनके संनिकर्षकी प्ररूपणा मतिज्ञानावरणके ही समान करनी चाहिये।

तत्पश्चात् यहाँ कुछ प्रकृतियोंके संनिकर्षके कहनेकी प्रतिज्ञा करके सम्भवतः सातावेदनीयको प्रधान करके (प्रतियोंमें यह उल्लेख पाया नहीं जाता, सम्भवतः वह स्खलित हो गया है।) भी पूर्वोक्त प्रकारसे संनिकर्षकी प्ररूपणा की गयी है। यह उत्कृष्ट पदविषयक संनिकर्षकी प्ररूपणा की गयी है। जघन्य पद विषयक संनिकर्ष की प्ररूपणाके सम्बन्धमें इतना मात्र उल्लेख किया गया है कि उनकी प्ररूपणा विचारकर करना चाहिये।

अल्पबहुत्व -- यहाँ प्रथमतः सामान्य (ओघ) स्वरूपसे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिउदीरणा विषयक अल्पबहुत्वका विवेचन करते हुए तदनुसार आदेशकी अपेक्षा इत्यादि

मार्गणाओंमें भी पूर्वोक्त अल्पबहुत्वके कथन करनेका उल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् ओघ और फिर आदेश रूपसे जघन्य स्थितिउदीरणाविषयक अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की है।

भुजाकार स्थितिउदीरणा -- यहाँ पहले अर्थपदका विवेचन करते हुए बतलाया गया है कि अल्पतर स्थितियोंकी उदीरणा करके आगेके अनन्तर समयमें बहुतर स्थितियोंकी उदीरणा करनेपर भुजाकार स्थितिउदीरणा होती है। बहुतर स्थितियोंकी उदीरणा करके आगेके अनन्तर समयमें अल्प स्थितियोंकी उदीरणा करनेपर यह अल्पतर स्थितिउदीरणा कही जाती है। जितनी स्थितियोंकी उदीरणा इस समय की गयी है आगेके अनन्तर समयमें भी उतनीही स्थितियोंकी उदीरणा की जानेपर यह अवस्थित उदीरणा कहलाती है। जिसने पहले स्थितिउदीरणा नहीं की है किन्तु अब कर रहा है उसकी यह उदीरणा अवक्तव्य उदीरणा कही जाती है। इस प्रकारसे अर्थपदका कथन करके तत्पश्चात् यहाँ भुजाकार स्थितिउदीरणाकी प्ररूपणा स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर और अल्पबहुत्व इन अधिकारोंके द्वारा यथासम्भव की गयी है। तत्पश्चात् पदनिक्षेपका संक्षिप्त विवेचन करते हुए वृद्धिउदीरणाकी प्ररूपणाके इन अधिकारोंद्वारा जानकर करनेका संकेतमात्र किया है -- स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल और अन्तर। इसके बाद फिर इसी वृद्धिप्ररूपणाके आश्रयसे अल्पबहुत्वका विचार विस्तारसे किया गया है।

अनुभागउदीरणा -- अनुभागउदीरणा को मूलप्रकृतिउदीरणा और उत्तरप्रकृतिउदीरणा इन दो भागोंमें विभक्त करके उनमें मूलप्रकृतिउदीरणाका कथन जानकर करनेका उल्लेखमात्र किया गया है। उत्तरप्रकृति अनुभागउदीरणाकी प्ररूपणामें इन २४ अनुयोगद्वारोंका निर्देश करते हुए यह कहा गया है कि इन अनुयोगद्वारोंका कथन करनेके पश्चात् भुजाकार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान का भी कथन करना चाहिये। वे अनुयोगद्वार ये हैं -- १ संज्ञा, २ सर्वउदीरणा, ३ नोसर्वउदीरणा, ४ उत्कृष्ट उदीरणा, ५ अनुत्कृष्ट उदीरणा, ६ जघन्य उदीरणा, ७ अजघन्य उदीरणा, ८ सादिउदीरणा, ९ अनादिउदीरणा, १० ध्रुव उदीरणा, ११ अध्रुव उदीरणा, १२ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, १३ एक जीवकी अपेक्षा काल, १४ एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, १५ नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, १६ भागाभागानुगम, १७ परिमाण, १८ क्षेत्र, १९ स्पर्शन, २० नाना

जीवोंकी अपेक्षा काल, २१ नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, २२ भाव, २३ अल्पबहुत्व और २४ संनिकर्ष ।

इनमें संज्ञाके घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा इन दो भेदोंका निर्देश करके फिर घातिसंज्ञाकी प्ररूपणा करते हुए यह बतलाया है कि आभिनिबोधिक ज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण इन चारकी उत्कृष्ट उदीरणा सर्वघाती तथा अनुत्कृष्ट उदीरणा सर्वघाती एवं देशघाती भी होती है। केवलज्ञानावरणकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट उदीरणा सर्वघाती ही होती है। इसी प्रकारसे दर्शनावरण आदि अन्य प्रकृतिभेदोंके सम्बन्धमें भी इस घातिसंज्ञाकी प्ररूपणा की गयी है।

स्वामित्व -- यहाँ ये चार अनुयोगद्वार निर्दिष्ट किये गये हैं -- प्रत्ययप्ररूपणा, विपाकप्ररूपणा, स्थानप्ररूपणा और शुभाशुभप्ररूपणा। प्रत्ययप्ररूपणा में यह बतलाया गया है कि पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, तीन दर्शनमोहनीय और सोलह कषायोंकी उदीरणा परिणामप्रत्ययिक है। नौ नोकषायोंकी पूर्वानुपूर्वीसे असंख्यातवें भाग प्रमाम परिणामप्रत्ययिक तथा पश्चादानुपूर्वीसे असंख्यात बहुभागप्रमाण भवप्रत्ययिक है। साता व असाता वेदनीय, चार आयु कर्म, चार गति और पाँच जातिकी उदीरणा भवप्रत्ययिक है। औदारिकशरीरकी उदीरणा तिर्यच और मनुष्योंके भवप्रत्ययिक है। वैक्रियिक शरीरकी उदीरणा देवनारकियोंके भवप्रत्ययिक तथा तिर्यच-मनुष्योंके परिणामप्रत्ययिक है। इसी क्रमसे आगे भी यह प्ररूपणा की गयी है।

विपाकप्ररूपणामें बतलाया गया है कि जैसे पहले निबन्धनकी प्ररूपणा की गयी है। (देखिये पृ. १७४) उसी प्रकार यहाँ विपाककी भी प्ररूपणा करना चाहिये। स्थानप्ररूपणामें मतिज्ञानावरणादि प्रकृतियोंकी उदीरणाके उत्कृष्ट आदि भेदोंमें एकस्थानिक और द्विस्थानिक आदि अनुभागस्थानोंकी सम्भावना बतलायी गयी है। शुभाशुभप्ररूपणामें पुण्य-पापरूप प्रकृतियोंका नामोल्लेख मात्र किया गया है।

इसके पश्चात् मतिज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट आदि उदीरणा भेदोंके स्वामियोंकी प्ररूपणा यथाक्रमसे की गयी है। आगे इसी क्रमसे पूर्वोक्त उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य एवं अजघन्य उदीरणा भेदोंकी एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल व अन्तर तथा स्वस्थान व परस्थान संनिकर्षकी भी प्ररूपणा की गयी है। इस प्रकार पूर्वोक्त २४ अनुयोगद्वारोंमें इतने

अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा करके शेष अनुयोगद्वारोंके सम्बन्धमें यह कह दिया है कि उनकी प्ररूपणा जानकर करना चाहिये। अन्तमें अल्पबहुत्व (२३ वें) अनुयोगद्वारकी प्ररूपणा विस्तारसे की गयी है।

भुजाकार अनुभागउदीरणा -- यहाँ अर्थपदकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया है कि अनन्तर अतिक्रान्त समयमें अल्पतर स्पर्धकोंकी उदीरणा करके यदि इस समयमें बहुतर स्पर्धकोंकी उदीरणा करता है तो वह भुजाकार अनुभाग उदीरणा कही जायेगी। यदि अनन्तर अतिक्रान्त समयमें बहुतर स्पर्धकोंकी उदीरणा करके इस समय स्तोक स्पर्धकोंकी उदीरणा करता है तो उसे अल्पतर उदीरणा करना चाहिये। अनन्तर अतिक्रान्त समयमें जितने स्पर्धकोंकी उदीरणा की गयी है आगे भी यदि उतने उतने ही स्पर्धकोंकी उदीरणा करता है तो उसका नाम अवस्थित उदीरणा होगा। पूर्वमें अनुदीरक होकर आगे उदीरणा करनेपर यह अवक्तव्य उदीरणा कही जायेगी। इस प्रकारसे अर्थपदका कथन करते हुए यहाँ यह संकेत किया है कि पूर्वोक्त भुजाकारादि उदीरणाओंके स्वामित्वकी प्ररूपणा इसी अर्थपदके अनुसार करना चाहिये।

तत्पश्चात् यहाँ इन्हीं उदीरणाओंसे सम्बन्धित एक जीवकी अपेक्षा काल व अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल व अन्तर; तथा अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गयी है। पश्चात् पदनिक्षेपकी प्ररूपणा करते हुए उसमें उत्कृष्ट व जघन्य भेदोंकी अपेक्षा स्वामित्व और अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गयी है। वृद्धिउदीरणामें समुत्कीर्तनका कथन करके तत्पश्चात् यह संकेत किया है कि अल्पबहुत्व पर्यन्त स्वामित्व आदि अधिकारोंकी प्ररूपणा जिस प्रकार अनुभागवृद्धिबन्धमें की गयी है उसी प्रकारसे उनकी प्ररूपणा यहाँ भी करना चाहिये।

प्रदेशउदीरणा -- मूलप्रकृतिप्रदेशउदीरणा और उत्तरप्रकृतिप्रदेशउदीरणाके भेदसे प्रदेशउदीरणा दो प्रकारकी है। इनमें मूलप्रकृतिप्रदेशउदीरणाकी विशेष प्ररूपणा यहाँ न कर केवल इतना मात्र संकेत किया गया है कि मूलप्रकृतिप्रदेशउदीरणाकी समुत्कीर्तना आदि चौबीस अनुयोगद्वारोंके द्वारा अन्वेषण करके भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धिकी प्ररूपणा कर चुकनेपर मूलप्रकृतिप्रदेशउदीरणा समाप्त होती है। ऐसा ही निर्देश कषायप्राभृतमें चूर्णिसूत्रके कर्ता द्वारा भी किया गया है। (देखिये क. पा. सूत्र पृ. ५१९)

उत्तरप्रकृतिप्रदेशउदीरणाकी प्ररूपणामें स्वामित्वका विवेचन करते हुए पहले मतिज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशउदीरणाके स्वामियोंका और तत्पश्चात् उन्हींकी जघन्य

प्रदेशउदीरणाके स्वामियोंका कथन किया गया है। इसके बाद एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल और नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर इन अनुयोगद्वारोंका कथन स्वामित्वसे सिद्ध करना चाहिये। इतना उल्लेख मात्र करके स्वस्थान और परस्थान संनिकर्षकी संक्षेपमें प्ररूपणा की गयी है।

प्रदेशभुजाकार उदीरणाकी प्ररूपणामें पहले प्रदेशभुजाकार उदीरणा, प्रदेशअल्पतरउदीरणा, प्रदेशअवस्थितउदीरणा और प्रदेशअवक्तव्यउदीरणा इन चारोंके स्वरूपका निर्देश किया गया है। तत्पश्चात् स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर इनकी प्ररूपणा अनुभागभुजाकारउदीरणाके समान करनेका उल्लेख करके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गयी है।

पदनिक्षेपनिरूपणामें पहले उत्कृष्ट स्वामित्वका विवेचन करते हुए उत्कृष्ट और जघन्य अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गयी है।

वृद्धिउदीरणामें प्रथमतः स्थानसमुत्कीर्तनाका कथन करके तत्पश्चात् स्वामित्व आदि शेष अनुयोगद्वारोंका कथन भी अति संक्षेपमें किया गया है। इस प्रकारसे प्रदेशउदीरणाकी प्ररूपणा हो चुकनेपर यहाँ उदीरणा उपक्रम समाप्त हो जाता है।

उपशामना उपक्रम -- यहाँ उपशामनाके सम्बन्धमें निक्षेपयोजना करते हुए कर्मद्रव्यउपशामनाके दो भेद बतलाये हैं -- करणोपशामना और अकरणोपशामना। इनमें अकरणोपशामनाका अनुदीर्णोपशामना यह दूसरा भी नाम है। इसकी सविस्तर प्ररूपणा कर्मप्रवादमें की गयी है। करणोपशामना भी दो प्रकारकी है -- देशकरणोपशामना और सर्वकरणोपशामना। सर्वकरणोपशामनाके और भी दो नाम हैं -- गुणोपशामना और प्रशस्तोपशामना। इस सर्वकरणोपशामनकी प्ररूपणा कसायपाहुडमें की जायेगी, ऐसा निर्देश करके यहाँ उसकी प्ररूपणा नहीं की गयी है। इसी प्रकार देशकरणोपशामनाके भी दूसरे दो नाम हैं -- अगुणोपशामना और अप्रशस्तोपशामना। इसी अप्रशस्तोपशामनाको यहाँ अधिकारप्राप्त बतलाया है। उपशामनाके पूर्वोक्त भेदोंके लिये तालिका देखिये --

उपशामना

नामउपशामना      स्थापनाउपशामना      द्रव्यउपशामना      भावउपशामना  
 आगमद्रव्यउपशामना      नोआगमद्रव्यउपशामना      आगमभावउपशामना      नोआगमभावउपशामना  
 कर्मद्रव्यउपशामना      नोकर्मद्रव्यउपशामना  
 करणोपशामना      अकरणोपशामना  
 (अनुदीर्णोपशामना इसका ही नामान्तर है)  
 देशकरणोपशामना      सर्वकरणोपशामना  
 (अगुणोपशामना और अप्रशस्तोपशामना ) (गुणोपशामना और अप्रशस्तोपशामना )  
 इसीके नामान्तर हैं)      इसीके नामान्तर हैं ।)

आचार्य यतिवृषभ द्वारा विरचित कसायपाहुडके चूर्णिसूत्रोंमें भी इन उपशामना भेदोंके सम्बन्धमें प्रायः इसी प्रकार और इन्हीं शब्दोंमें कथन किया गया है । (एतो सुत्तविहासा । तं जहा । उवसामणा कदिविधा ति? उवसामणा दुविहा करणोवसामणा करणोवसामणा च । जा सा अकरणोवसामणा तिस्से दुवे णामधेयाणि -- अकरणोवसामणा ति वि अणुदिण्णोवसामणा ति वि । एसा कम्मपवादे । जा सा करणोवसामणा सा दुविहा -- देसकरणोवसामणा ति वि सब्बकरणोवसामणा ति वि । देवसकरणोवसामणाए दुवे णामाणि देसकरणोवसामणा ति वि अप्पसत्थउवसामणा ति वि । एसा कम्मपयडीसु । जा सा सब्बकरणोवसामणाए तिस्से वि दुवे णामाणि -- सब्बकरणोवसामणा ति वि पसत्थकरणोवसामणा ति वि । एदाए तत्थपयदं । क. पा. सुत्त पृ. ७०७-८) **कसायपाहुडसे** इतनी ही विशेषता है कि सर्वकरणोपशामनाका 'गुणोपशामना' और देशकरणोपशामनाका 'अगुणोपशामना' इन नामान्तरोंका उल्लेख अधिक किया गया है । कसायपाहुडकी जयधवला टीकामें उपशामनाके पूर्वोक्त भेदोंमेंसे कुछका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है --

अकरणोपशामना -- कर्मप्रवाद नामका जो आठवाँ पूर्वाधिकार है वहाँ सब कर्मोंसम्बन्धी मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी विपाक पर्याय और अविपाक पर्यायों का कथन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार बहुत विस्तारसे किया गया है । वहाँ इस अकरणोपशामनाकी प्ररूपणा देखना चाहिये ।

देशकरणोपशामना -- दर्शनमोहनीयका उपशाम कर चुकनेपर उदयादि करणोंमेंसे कुछ तो उपशान्त और कुछ अनुपशान्त रहते हैं । इसलिए यह देशकरणोपशामना कही जाती है । X X X X द्वितीय पूर्वकी पाँचवीं 'वस्तु'से प्रतिबद्ध कर्मप्रकृति नामका चौथा प्राभृत अधिकार प्राप्त है । वहाँ इस देशकरणोपशामनाकी प्ररूपणा देखना चाहिये, क्योंकि, वहाँ इसकी प्ररूपणा विस्तारपूर्वक की गयी है ।

सर्वकरणोपशामना -- सब करणोंकी उपशामनाका का नाम सर्वकरणोपशामना है ।

अप्रशस्तोपशामना -- संसारपरिभ्रमणके योग्य अप्रशस्त परिणामोंके निमित्तसे होनेके कारण यह अप्रशस्तोपशामना कही जाती है ।

इन उपशामना भेदोंका उल्लेख प्रायः इसी प्रकारसे श्वेताम्बर कर्मप्रकृति ग्रन्थमें पाया जाता है । इस कारणकी प्ररूपणा प्रारम्भ करते हुए वहाँ सर्वप्रथम यह गाथा प्राप्त होती है --

करणकयाऽकरणा वि य दुविहा उवसामणत्थ बिड्याए ।

अकरण-अणुइन्नाए अणुओगधरे पणिवयामि ।।१।।

इसमें उपशामनाके करणकृता और अकरणकृता ये दो ही भेद बतलाये गये हैं । इनमें द्वितीय अकरणकृता उपशामनाके दो ही नाम वहाँ भी निर्दिष्ट किये गये हैं -- अकरणकृता और अनुदीर्णा । यहाँ विशेष ध्यान देनेयोग्य 'अणुओगधरे पणिवयामि' वाक्यांश है । इसकी संस्कृत टीकामें श्रीमलयगिरि सूरिने लिखा है --

इस अकरणकृतोपशामनाके दो नाम हैं -- अकरणोपशामना और अनुदीरणोपशामना । उसका अनुयोग इस समय नष्ट हो चुका है । इसीलिये आचार्य (शिवशर्मसूरि) स्वयं उसके अनुयोगको न जानते हुए उसके जानकार विशिष्ट प्रतिभासे सम्पन्न चतुर्दशपूर्ववेदियोंको नमस्कार करते हुए कहते हैं -- बिड्याए इत्यादि ।

यहाँ द्वितीय गाथामें सर्वोपशामना और देशोपशामना के वे ही दो नाम निर्दिष्ट किये गये हैं जो कि यहाँ प्रकृत धवलामें बतलाये गये हैं । यथा -- सर्वोपकरणशामनाके गुणोपशामना और प्रशस्तोपशामना तथा देशोपकरणशामनाके उनसे विपरीत अगुणोपशामना और अप्रशस्तोपशामना ।

यहाँ अप्रशस्तोपशामनाको अधिकार प्राप्त बतलाते हुए श्री वीरसेनाचार्यने उसके अर्थपदका कथन करते हुए बतलाया है कि जो प्रदेशपिण्ड अप्रशस्तोपशामनाके द्वारा उपशान्त किया गया है उसका अपकर्षण किया जा सकता है, उत्कर्षण किया जा सकता है, अन्य प्रकृतिमें संक्रम कराराया जा सकता है परन्तु उदयावलीमें प्रवेश नहीं कराराया जा सकता है । इस अर्थपदके अनुसार यहाँ पहले स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर तथा अल्पबहुत्व (भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धि प्ररूपणाओंकी यहाँ सम्भावना नहीं है) इन

अधिकारोंके द्वारा मूलप्रकृतिउपशामनाकी प्ररूपणा अति संक्षेपमें की गयी है।  
उत्तरप्रकृतिशामनाकी प्ररूपणा भी इन्हीं अधिकारोंके द्वारा संक्षेपमें की गयी है।

प्रकृतिस्थानोपशामनाकी प्ररूपणामें ज्ञानावरणादि कर्मोंके सम्भव स्थानोंका उल्लेख मात्र करके उनकी प्ररूपणा स्वामित्व आदि अधिकारोंके द्वारा करना चाहिये, ऐसा उल्लेखमात्र किया गया है। यहाँ भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धिउपशामनाकी भी सम्भावना है।

स्थितिउपशामना -- यहाँ पहले मूल प्रकृतियोंके आश्रयसे क्रमशः उत्कृष्ट और जघन्य अद्धाच्छेदकी प्ररूपणा करके तत्पश्चात् स्वामित्व आदि शेष अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा स्थितिउदीरणाके समान करना चाहिये, ऐसा संकेत किया गया है।

अनुभागउपशामना -- यहाँ मूलप्रकृतिउपशामनाको सुगम बतलाकर उत्तरप्रकृतिअनुभाग उपशामनामें उत्कृष्ट व जघन्य प्रमाणानुगम, स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल, अन्तर और संनिकर्ष; इन अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा यथासम्भव अनुभागसत्कर्मके समान करना चाहिये ऐसा निर्देश किया गया है। यहाँ तीव्रता और मन्दता के अल्पबहुत्वकी प्ररूपणाको जैसे अनुभागबन्धमें चौसठ पदों द्वारा तद्विषयक अल्पबहुत्वकी की गयी है वैसा करनेयोग्य बतलाया है।

प्रदेशउपशामना -- यहाँ 'प्रदेशउपशामनाकी प्ररूपमा जानकर करना चाहिये' इतना संकेतमात्र किया है।

विपरिणामोपक्रम -- प्रकृतिविपरिणमना आदिके भेदसे विपरिणामोपक्रम चार प्रकारका है। इनमें प्रकृतिविपरिणमनाके दो भेद हैं -- मूलप्रकृतिविपरिणमना और उत्तरप्रकृतिविपरिणमना। मूलप्रकृतिविपरिणमना के भी दो भेद हैं -- देशविपरिणमना और सर्वपरिणमना।

देशविपरिणमना -- जिन प्रकृतियोंका अधःस्थितिगलनाके द्वारा एकदेश निर्जीर्ण होता है उसका नाम देशविपरिणमना है।

सर्वपरिणमना -- जो प्रकृति सर्वनिर्जरा के द्वारा निर्जीर्ण होती है वह सर्वपरिणमना कहलाती है।

उत्तरप्रकृतिविपरिणमना -- देशनिर्जरा या सर्वनिर्जराके द्वारा निर्जीर्ण प्रकृति तथा जो अन्य प्रकृतिमें देशसंक्रमण अथवा सर्वसंक्रमणके द्वारा संक्रान्त होती है इसका नाम उत्तरप्रकृतिविपरिणमना है।

इस स्वरूपकथनके अनुसार यहाँ मूल और उत्तर प्रकृतिविपरिणमनाकी प्ररूपणा स्वामित्व आदि अधिकारोंके द्वारा करना चाहिये, ऐसा उल्लेख भर किया गया है। इसका कारण तद्विषयक उपदेशका अभावही प्रतीत होता है। यहाँ भुजाकार, पदनिक्षेप और वृद्धिकी सम्भावना नहीं है।

अपकर्षण, उत्कर्षण और संक्रमको प्राप्त करायी जानेवाली स्थितिका नाम विपरिणामना स्थिति है। अपकर्षित, उत्कर्षित अथवा अन्य प्रकृतिको प्राप्त कराया गया अनुभाग विपरिणामित अनुभाग कहलाता है। जो प्रदेशपिण्ड निर्जराको प्राप्त हुआ है अथवा अन्य प्रकृतिको प्राप्त कराया गया है वह प्रदेशविपरिणामना कही जाती है। इनमें स्थितिविपरिणमनाकी प्ररूपणा स्थितिसंक्रम, अनुभागविपरिणमनाकी प्ररूपणा अनुभागसंक्रम और प्रदेशविपरिणमनाकी प्ररूपणा प्रदेशसंक्रमके समान करनेयोग्य बतलायी गयी है।

१०. उदयानुयोगद्वार -- यहाँ नोआगमद्रव्य उदयको प्रकृत बतलाकर उसके प्रकृतिउदय आदि के भेदसे चार भेद बतलाये हैं। उत्तर प्रकृति उदयकी प्ररूपणामें स्वामित्वका कथन करते हुए किन प्रकृतियोंके कौन-कौनसे जीव वेदक हैं, इसका विवेचन किया गया है। अन्य काल आदि अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा स्वामित्वसे सिद्ध करके करना चाहिये ऐसा उल्लेख करते हुए यहाँ अल्पबहुत्वके विवेचनमें जो प्रकृति उदीरणाअल्पबहुत्वसे कुछ विशेषता है उसका उपदेशभेदके अनुसार निर्देशमात्र किया गया है।

स्थितिउदय -- स्थितिउदयकी प्ररूपणामें पहले स्थितिउदय प्रमाणानुगम, स्वामित्व, काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, संनिकर्ष ओर अल्पबहुत्व इन अधिकारोंके अनुसार मूलप्रकृतिस्थितिउदयकी प्ररूपणा की गयी है। यह उदयकी प्ररूपणा प्रायः उदीरणप्ररूपणाके ही समान निर्दिष्ट की गयी है।

उत्तरप्रकृतिस्थितिउदय -- यहाँ एवं उत्कृष्ट स्थिति उदयके प्रमाणानुगमकी प्ररूपणा उत्कृष्ट स्थिति उदीरणाके प्रमाणानुगमके समान बतलाते हुए उसे उदयस्थितिसे अधिक बतलाया गया है। जघन्य स्थिति उदयकी प्ररूपणामें नामनिर्देशपूर्वक कुछ कर्मोंका जघन्य प्रमाणानुगम बतलाकर शेष कर्मोंके प्रमाणानुगम, सभी कर्मोंके स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, नाना

जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, संनिकर्ष और अल्पबहुत्व इन अधिकारोंकी भी प्ररूपणा स्थिति उदीरणाके समान निर्दिष्ट की गयी है।

अनुभाग उदय -- यहाँ मूलप्रकृति अनुभागउदय और उत्तरप्रकृति अनुभागउदयकी प्ररूपणा चौबीस अनुयोगोंके द्वारा करणीय बतलाकर जघन्य स्वामित्वके विषयमें कुछ थोड़ीसी विशेषता का भी उल्लेख किया गया है।

प्रदेशउदय -- यहाँ मूलप्रकृति प्रदेशउदयकी प्ररूपणामें सब अनुयोगोंके द्वारा जानकर करनेयोग्य बतलाकर उत्तरप्रकृति प्रदेशउदयकी प्ररूपणामें स्वामित्वके परिज्ञानार्थ 'सम्मत्तुप्पत्तीए' आदि दो गाथाओंके द्वारा १० गुणश्रेणियोंका निर्देश करके उक्त गुणश्रेणियोंमें कौनसी गुणश्रेणियोंमें कौनसी गुणश्रेणियाँ भवान्तरमें संक्रान्त होती हैं, इसका उल्लेख करते हुए उत्कृष्ट व जघन्य प्रदेशउदयविषयक स्वामित्वका विवेचन किया गया है।

एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व आदि अन्य अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा पूर्वोक्त स्वामित्व प्ररूपणासे ही सिद्ध करनेयोग्य बतलाकर तत्पश्चात् उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेशउदयविषयक अल्पबहुत्वका विवेचन किया गया है।

भुजाकार प्रदेशउदयकी प्ररूपणामें प्रथमतः अर्थपदका निर्देश करके तत्पश्चात् स्वामित्व आदि अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा की गयी है। एक जीवकी अपेक्षा काल प्ररूपणा प्रथमतः नागहस्ती क्षमाश्रमण के उपदेशानुसार और तत्पश्चात् अन्य उपदेशके अनुसार की गयी है।

पदनिक्षेपप्ररूपणामें स्वामित्वका विवेचन करते हुए तत्पश्चात् अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की गयी है।